P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-8* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

जैन धर्म का विकास एवं विस्तार – महावीर काल से मौर्य काल तक

यश जैन
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास एवं
भारतीय संस्कृति विभाग
यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान
जयपुर

सारांश

निस्संदेह जैन धर्म महावीर के पूर्व भी भारत वर्ष में विद्यमान था। महावीर के काल में ही जैन धर्म का मगध और मगध के समीपवर्ती क्षेत्रों में व्यापक प्रचार – प्रसार हो गया था। तत्कालीन समय के अधिकांश राजाओं ने जैन धर्म के विस्तार में सहायता की। महावीर के निर्वाण प्राप्ति के बाद नंद वंश और मौर्य वंश के काल में भी कई राजाओं, मंत्रियों और सेठों ने जैन धर्म के विकास और विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मुख्य शब्द : जैन धर्म, महावीर काल, मौर्य काल।

प्रस्तावना

महावीर कालीन

निस्संदेह जैन धर्म महावीर के पूर्व भी भारत वर्ष में विद्यमान था। महावीर के पूर्व 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे, जिनका काल महावीर से तकरीबन 250 वर्ष पहले माना गया है। पार्श्वनाथ 30 वर्ष की आयु में वैराग्य उत्पन्न होने के कारण गृहत्याग करके संन्यासी हो गए थे। 83 दिन की घोर तपस्या के बाद उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। जैन अनुश्रुति के अनुसार उन्होंने 70 वर्ष तक धर्म का प्रचार किया।[1] महावीर के पिता और माता दोनों पहले से जैन धर्म के अनुयायी थे।

महावीर के जीवन काल में ही जैन धर्म का मगध और मगध के निकटवर्ती क्षेत्रों में व्यापक प्रचार–प्रसार हो गया था। तत्कालीन समय के अधिकांश राजाओं ने जैन धर्म के प्रचार में सहायता की। महावीर स्वामी नें स्वयं तीस वर्ष तक स्थान–स्थान पर विहार करके जैन धर्म का प्रचार–प्रसार किया। राजगृह में स्थित विपुलाचल पर्वत पर श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को भगवान महावीर ने अपना पहला उपदेश दिया था। दिगंबर आम्नाय के अनुसार यह उपदेश भगवान महावीर द्वारा ऊँकार रूप दिव्यध्वनि के रूप में दिया गया था। इस दिव्य ध्वनि को गौतम गणधर द्वारा लोकभाषा में परिवर्तित किया गया था। हालांकि श्वेतांबर आम्नाय का मानना है कि भगवान महावीर खुद ही लोकभाषा में अपने उपदेश देते थे।

महावीर के 11 प्रमुख अनुयायी थे, जिन्हें गणधर कहा जाता था। इन 11 गणधरों के नाम हैं–इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त (आर्यव्यक्त), सुधर्मा, मण्डिक (मंडित), मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल, मेतार्य और प्रभास। ये सभी गणधर महावीर स्वामी के मुनिसंघ का नेतृत्व करते थे। ये 11 गणधर ब्राह्मण थे किंतु वे जैन श्रमण परंपरा में शामिल हो गए थे। महासती चंदना महावीर के आर्यिका संघ की प्रधान थीं।

जैन शास्त्रों के अनुसार मगध नरेश श्रेणिक–बिम्बिसार और उनकी पत्नी चेलना महावीर के अनुयायी थे। मगध नरेश अजातशत्रु एवं उनके उत्तराधिकारी उदयन ने भी जैन धर्म के विस्तार में मदद की। महावीर की माता त्रिशला लिच्छवि कुल के प्रमुख चेटक की बहन थीं। आवश्यक चूर्णि के अनुसार चेटक स्वयं भगवान महावीर का भक्त था। अवन्ति नरेश प्रद्योत और उसकी 8 रानियाँ भी महावीर के प्रति भक्तिभाव रखती थीं। कौशांबी की रानी मृगावती भी जैन थीं और सिंधु–सौवीर के राजा उदयन भी जैन धर्म को मानते थे। वज्जि संघ तथा मल्ल गणराज्य में भी महावीर का बडा सम्मान था।[2] चंपा का शासक दधिवाहन भी महावीर स्वामी का भक्त था, जिसकी पुत्री चंदना उनकी प्रथम भिक्षुणी बनी थीं।

महावीर ने कैवल्य प्राप्ति के बाद तीस वर्षों तक घूम–घूमकर जैन धर्म के विकास एवं विस्तार हेतु स्थान–स्थान पर विहार किया था। वे वर्ष में आठ महीने धर्मप्रचार करते थे जबकि वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे विभिन्न नगरों में प्रवास करते थे। जैन शास्त्रों के अनुसार महावीर ने चंपा, वैशाली, राजगृह,

नालंदा, श्रावस्ती, कौशांबी, अंग, बंग, मगध, विदेह, काशी, कोशल, वत्स, अवन्ति, पांचाल, सिंधु, सौवीर प्रदेशों में अपने मत का प्रचार किया।

महावीर के निर्वाण के बाद जैन संघ का नायकत्व उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम को प्राप्त हुआ और उन्होंने महावीर के उपदेशों को श्रृंखलाबद्ध, व्यवस्थित एवं वर्गीकृत किया। इन्हें महावीर स्वामी से 12 वर्ष बाद निर्वाण प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् महावीर के ही एक अन्य गणधर सुधर्माचार्य संघनायक हुए और निर्वाण प्राप्त होने तक 12 वर्ष उन्होंने नायकत्व किया। तत्पश्चात् महावीर निर्वाण संवत् 24 में सुधर्माचार्य के शिष्य जम्बूस्वामी जैन संघ के नायक हुए और उन्होंने 38 वर्ष तक संघ का नायकत्व किया। जम्बूस्वामी ने महावीर संवत् 62 (ईस्वीपूर्व 465) में मोक्ष लाभ किया। महावीर की शिष्य परंपरा में जम्बूस्वामी अंतिम केवली थे। श्वेताम्बर परंपरा में जम्बूस्वामी को ही महावीर के उपदेशों को आगम रूप में संकलित करने का श्रेय दिया गया हैं।[3]

उवासगदसाओ सुत्त (उपासकदशा सूत्र) में महावीर के दश सर्वश्रेष्ठ उपासकों व परम भक्तों का वर्णन मिलता है। ये सभी गृहस्थावस्था में थे। ये थे – आणंद, कामदेव, चुलणीपिता, सुरादेव, चुल्लसय, कुण्डकोलिय, सद्दालपुत्त, महासतय, नंदिणीपिया और लेइयापिता। इनमें से सद्दालपुत्त जाति से शूद्र और कर्म से कुम्भकार थे। अन्य सभी उपासक श्रेष्ठि–वर्ग से थे। इसके अतिरिक्त महावीर के चार अन्य प्रमुख उपासकों का भी उल्लेख है,जो श्रेष्ठि–पुत्र थे – राजगृह के सुदर्शन सेठ, शालिभद्र, धन्ना और जम्बूकुमार। ये जम्बू कुमार ही अंतिम केवली थे।

उत्तर महावीर कालीन

जैन धर्म जिसकी उत्पत्ति मगध में हुई थी, धीरे–धीरे इसका विस्तार संपूर्ण भारतवर्ष में हो गया। भगवान महावीर द्वारा जैन धर्म का विस्तार एवं प्रसार उत्तर भारत के एक बहुत बड़े भू–भाग मे हो गया था। (विशेष तौर पर मगध और उसके समीपवर्ती इलाकों में)। भगवान महावीर के समय विभिन्न राजवंशो द्वारा जैन धर्म के प्रसार में पर्याप्त मदद प्रदान की गई थी। भगवान महावीर के निर्वाण प्राप्ति के बाद भी विभिन्न राजवंशो, मंत्रियों और श्रेष्ठियों द्वारा जैन धर्म के विकास और विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया।

नन्द वंश

(364–324 ई. पू.) नंद मगध के प्रतापी राजा थे। इनके समय मगध में जैन धर्म उन्नत अवस्था में था। खारवेल के उदयगिरि गुफा अभिलेख[4] से जानकारी मिलती है कि नन्दराजा जैन मूर्ति कलिंग से पाटलिपुत्र लेकर आया था। इससे दो बातों का पता चलता है, पहली, नंदकाल में जैन मूर्तियाँ निर्मित होने लगी थीं और, दूसरी, नंदराजा जैन धर्म का समर्थक था। यह नंदराजा संभवतः नन्दिवर्धन (लगभग 449–407 ई.पू.) था जो कि वीर निर्वाण संवत् 103 (424 ई.पू.) में कलिंग देश पर विजय प्राप्त कर उस राष्ट्र के इष्टदेवता कलिंग जिन (प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव) की प्रतिमा को वहाँ से मगध लाया था एवं उसे अपनी राजधानी पाटिलपुत्र में स्थपित किया था। नंदिवर्धन का पुत्र व उत्तराधिकारी 'महानन्दिन' भी बहुत शक्तिशाली राजा था, जिसने तकरीबन 44 वर्ष तक शासन किया था, कुल परम्परानुसार वह स्वयं जैन धर्मानुयायी था। जैन अनुश्रुति के अनुसार नंद राजाओं के कई मंत्री जैन धर्म का पालन करते थें। संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस से ज्ञात होता है कि नंदों के काल में जैन शक्तिशाली एवं समृद्ध थे। मुद्राराक्षस में चाणक्य द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य को सिंहासन पर बैठाने की कथा मिलती है। इस समय चाणक्य ने एक जैन को मुख्य गुप्तचर के रूप में प्रयोग किया था।[5]

मौर्य वंश (324–187 ई. पू.)

मौर्य वंश की स्थापना सम्राट चन्द्रगप्त मौर्य, (324–300 ई. पू.) द्वारा की गई थी। चन्द्रगुप्त मौर्य को ही भारत का प्रथम ऐतिहासिक सम्राट माना जाता है। तिलोयपण्णति (600ई.) और राजवलीकथा दोनों चन्द्रगुप्त मौर्य के जैन होने का उल्लेख करती हैं। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य बन गया था। इसी समय चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया और मगध में बारहवर्षीय भीषण अकाल पड़ने पर वह श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ श्रवणबेलगोला चला गया। इस बात की पुष्टि बाद के कई साहित्यिक और अभिलेखीय प्रमाणों से भी होती है। हरिषेण द्वारा 931 ई. में रचित बृहत् कथाकोश, रत्ननंदि द्वारा 1450 ई. में रचित भद्रबाहुचरित्, कन्नड़ में 1680 ई. मे रचित मुनिवंशाभ्युदय और रालवलिय कथा इस घटना का जिक्र करते हैं। अनेक श्रवणबेलगोला से प्राप्त अभिलेख[6] भी इस अनुश्रुति का उल्लेख करते हैं। इन अभिलेखों में सबसे पुराना अभिलेख 600ई. का है। श्रवणबेलगोला में ही 298 ई. पू. के लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन उपवास पद्धति (सल्लेखना) द्वारा देह त्याग दी। इसी कारण श्रवणबेलगोला में एक पहाड़ी का नाम चंद्रगिरि है। इसी पहाडी पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने तपस्या की थी। इसी पहाड़ी पर भद्रबाहु नामक एक गुफा है और चन्द्रगुप्त बसति नामक एक चैत्य भी है।

चन्द्रगुप्त के बाद उसका उत्तराधिकारी बिन्दुसार (लगभग 300–273 ई. पू.) सिंहासन पर बैठा। जैन ग्रंथ बिन्दुसार को जैन मानते हैं और उसे सिंहसेन की उपाधि देते हैं।

बिन्दुसार के बाद अशोक सम्राट बना। किंतु मौर्य वंश में जैन धर्म का विकास एवं विस्तार जिस सम्राट के समय हुआ, उसका नाम सम्प्रति था। ऐसा उल्लेख आता है कि जब अंधे होने या अंधे बना दिए जाने के कारण कुणाल ने मगध की राजगद्दी पर अपना अधिकार खो दिया तब अशोक द्वारा उसका पुत्र सम्प्रति उत्तराधिकारी घोषित किया गया। संप्रति जैन साधू सुहस्तिन् के प्रभाव से जैन धर्मावलम्बी बना था। संप्रति को जैन धर्म अंगीकार करवाने में महागिरि ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। संप्रति ने जैन धर्म का अपने साम्राज्य में खूब प्रचार–प्रसार किया। उसने उस समय के प्राचीन मंदिरों की मरम्मत करवायी, उनका पुररूद्वार करवाया और कई नवीन मंदिरों का निर्माण करवाया। 3½ सालों में उसने 25 हजार नए मंदिरों का निर्माण करवाया, 36 हजार मंदिरों की मरम्मत करवाई, 12½ लाख मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई और 95

हजार धातु मूतियाँ तैयार करवाईं।[7] विंसेन्ट स्मिथ के अनुसार सम्प्रति ने अरब, ईरान आदि यवन देशों में भी जैन संस्कृति के केन्द्र स्थापित किए थे। उसने अनेक देशों में जैन मुनियों को धर्म प्रचार के लिए भी भेजा था। उल्लेखनीय है कि राजस्थान और गुजरात के सभी जैन, स्मारक, जिनके निर्माता ज्ञात नहीं हैं, संप्रति के बताए जाते हैं।[8] चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रपौत्र सम्प्रति ने कई जैन मंदिरों में पाषाण, स्वर्ण, रजत, पीतल एवं अष्टधातु की जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनवाकर प्रतिष्ठित कीं। टोड[9] के अनुसार कुम्भलमेर का प्राचीन जैन मंदिर सम्प्रति द्वारा बनवाया गया था। नाड़लोई में एक प्राचीन जैन मंदिर जिसके मूलनायक प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। इसी मंदिर में मूर्ति की पीठिका पर वि.सं. 1686 का एक अभिलेख उत्कीर्ण है जिसमें बताया गया है कि इसका पुनरूद्वार नाड़लोई के जैन समाज ने किया था। मंदिर को मूलतः संप्रति ने बनवाया था।[10] संप्रति ने जैन धर्म की प्रभावना न सिर्फ उत्तर भारत में की, बल्कि उसने दक्षिण भारत में भी जैन प्रचारकों को भेजकर, वहाँ भी जैन धर्म का विस्तार किया। संप्रति के समय जैन साधू महाराष्ट्र, कुर्ग, आंध्र, द्राविड़, सब जगह विहार करते थे। जैन स्रोतों के अनुसार सम्प्रति के भाई सालिसुक ने काठियावाड़ में जैन धर्म का प्रचार–प्रसार किया था। जैन शास्त्रों से यह भी ज्ञात होता है कि संप्रति ने सुहस्तिन् के साथ पाँच हजार श्रमणों के साथ उज्जैन से शत्रुंजय का संघ निकाला। उसने एक सभा बुलाई जिसका उद्देश्य जैन धर्म का प्रचार करना था, इस सभा का नेतृत्व सुहस्तिन् ने किया था। कुछ वर्षों पहले कृष्णाघाटी के निकट स्थित एक स्थान बड्डमानु, जिसकी पहचान 24वें जैन तीर्थंकर वर्धमान से होती है, के उत्खनन में जो जैन पुरातात्विक अवशेष, स्तूप, पाषाण स्तंभ पर उत्कीर्णित मूर्तियाँ, शिलाफलक और तोरण मिले हैं,[11] ये सब सम्प्रति द्वारा जैन धर्म के विस्तार और प्रचार हेतु किए गए प्रयासों की पुष्टि करते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध–पत्र का उद्देश्य है महावीर काल से मौर्य काल तक जैन धर्म के विकास और विस्तार का गहराई से विश्लेषण करना।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मौर्य वंश के समय जैन धर्म का काफी विकास एवं विस्तार हुआ। मौर्यों के पश्चात् जैन धर्म धीरे–धीरे अपने मूल स्थान मगध से चारों दिशाओं में फैल गया। जैन धर्म दक्षिण में महाराष्ट्र, आंध्र, तमिलनाडु आदि प्रदेशों में, पश्चिम में मथुरा, मध्य भारत में मालवा तथा पूर्व में यह कलिंग तक फैल गया था। जैन धर्म को उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों जगहों के विभिन्न राजवंशो की पर्याप्त मदद मिली। मध्यम वर्ग जैसे व्यापारी, सेठ, साहुकारों में जैन धर्म बहुत लोकप्रिय रहा। तीसरी सदी के अंत तक जैन धर्म नें संपूर्ण भारत में अपनी उपस्थिति दर्ज कर ली थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *झा, द्विजेन्द्र नारायण; श्रीमाली, कृष्ण मोहन; प्राचीन भारत का इतिहास; दिल्ली, 1997 पृष्ठ, 145*
2. *झा, द्विजेंन्द्र नारायण; श्रीमाली, कृष्ण मोहन; प्राचीन भारत का इतिहास; दिल्ली, 1997, पृष्ठ 147.*
3. *जैन धर्म परिचय, सं. प्रो. वृषभप्रसाद जैन, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2012, पृष्ठ 40,41*
4. *एपिग्राफिका इण्डिका पृष्ठ 71, डी.सी. सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिपशन्स, II द्वितीय, पृ. 213–22*
5. *वी.ए.स्मिथ, ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 75*
6. *राइस लेविस, मैसूर एण्ड कुर्ग फ्रोम इंसक्रिपशन्स, नरसिंहाचार्य, इंसक्रिपशन्स ऑफ श्रवणबेलगोला*
7. *त्रिभुवनलाल शाह, एंशियंट इंडिया, II, पृ. 25–49, 293–94.*
8. *बी.के. तिवारी, हिस्ट्री ऑफ जैनिज्म इन बिहार, पृ. 105–07*
9. *एनल्स एण्ड एण्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान, II, 779–80.*
10. *नाहर जैन इन्सक्रिप्शन्स, सं. 856.*
11. *अर्हत वचन, ट, पृ. 35,49,58*